43

भारतीय संस्कृति में सार्वभौमिक मानवमूल्य

Dr. B. J. Patel
Associate Professor
Smt.B.V.Dhanak Arts Commerce Science and Management College Bagasara, Gujarat

शोधपत्र सारांश :

भारत की आत्मा भारतीय संस्कृति में निहित है। भारतीय संस्कृति का मूल हमें अमरवाणी के उद्घोषक वेदों में दिखाई देते हैं। अतः जिसे भारतीय संस्कृति कहा गया है, वह मूलतः वैदिक संस्कृति ही है। आर्यों द्वारा विकसित इस संस्कृति को आर्य संस्कृति भी कहा गया है। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम होने के कारण संसार की समस्त संस्कृतियों की सिरमौर है। संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। विश्व की अनेक संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की अपनी अलग पहचान है। भारत की आत्मा भारतीय संस्कृति में निहित है। भारतीय संस्कृति हमेशा अन्य संस्कृतियों के अच्छे विचारों को अपनाती रही है। कर्म-सिद्धांत के कारण ही भारतीय संस्कृति में संयम, दया, दान, करुणा, त्याग, प्रेम, सहनशीलता, अहिंसा, सहिष्णुता संतोष...आदि गुण विकसित हुए। संयुक्त परिवार प्रथा भारतीय संस्कृति का आधारस्तंभ है। साथ ही साथ विश्वबंधुत्व की परिकल्पना इसी संस्कृति की देन है। भारतीय संस्कृति जिन गुणों से युक्त है उनमें सर्वश्रेष्ठ गुण उसका विश्वमुखी होना है। मानव का जीवन अन्यों की तुलना में अलग है। उसका जीवन प्रत्येक प्राणी से भिन्न है। जो मनुष्य मूल्यहीन है, उसकी तुलना में जो मूल्यनिष्ठ है; उसे समाज-संसार सम्मान की नज़र से देखता है। संसार के लिए वह व्यक्ति मूल्यवान है, क्योंकि उसने अपने जीवन को जीवनमूल्यों से सजाया है। उत्कर्षमय जीवन, जीवन के मूल्यों का मूल आधार है। मूल्य बाहर से आरोपित नहीं हो सकते। जब ये मूल्य मानवजीवन के साथ जुड़ते हैं, तब वे मानव-मूल्य कहलाते हैं। भारतीय संस्कृति प्राचीन ऋषियों के चिंतन-मंथन से निःसृत अमृतमयी विचारों से समलंकृत है, जो प्रत्येक देश, प्रत्येक काल एवं प्रत्येक परिस्थिति में समसामयिक एवं प्रासंगिक हैं। मानवजीवन को स्वस्थ दिशा देने वाले लोकोपकारी तत्त्वों का नाम है मानव-मूल्य, जिनसे स्वस्थ व्यक्तित्व एवं स्वस्थ परिवार की संरचना होती है तथा क्रमशः स्वस्थ समाज एवं सुदृढ़ राष्ट्र की नींव निर्मित होती है। यह मानव-मूल्य मानव जीवन को आकाशदीप की भाँति मार्गदर्शन करते रहते हैं, उसे दिग्भ्रमित होने से बचाते हैं। 'सर्वजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय' की भावनामृत से भरे हुए ये मानव-मूल्य उस संजीवनी बुट्टी की तरह हैं जो मृतप्रायः प्राणों में भी श्वाँस फूंक देते हैं। धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रियों को वश में करना, विवेकमति, ज्ञान, सत्य, क्रोध न करना ये दस गुण मानव-मूल्य या धर्म स्वरूप माने गए हैं। एक तरफ मूल्य मानव-जीवन को सुसंस्कृत बनाकर उत्तम रूप प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी तरफ संस्कृति भी जीवन को सुचारू बनाकर जीने योग्य बनाती है। जीवन-मूल्य किसी राष्ट्र की संस्कृति की रक्षा करते हैं। भारतीय संस्कृति इन्ही मानदंडों पर मूल्यनिष्ठ मानव का निर्माण करती है।

बीज शब्द :

संस्कृति, सभ्यता, कृष्टि, कृषि, शाश्वतदीर्घता, विश्ववारा, विश्वमुखी, आत्मोपलब्धि, लोकोपकारी, वेदादि, मानवजीवन, मानव-मूल्य, जीवन-मूल्य, चिंतनमूलक, मूल्यनिष्ठ, तत्त्ववेत्ता

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में से एक है। यहाँ के लोगों द्वारा जिन दार्शनिक मार्गों का अनुसरण किया गया, जीवनयापन हेतु जिन पद्धतियों को अपनाया गया, उन्हें ही भारतीय संस्कृति व सभ्यता कहा जाता

है। भारत की आत्मा भारतीय संस्कृति में निहित है। भारतीय संस्कृति का मूल हमें अमरवाणी के उद्घोषक वेदों में दिखाई देते हैं। अतः जिसे भारतीय संस्कृति कहा गया है, वह मूलतः वैदिक संस्कृति ही है। आर्यों द्वारा विकसित इस संस्कृति को आर्य संस्कृति भी कहा गया है। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम होने के कारण संसार की समस्त संस्कृतियों की सिरमौर है। अपनी इस विशेषता के आधार पर वह विश्व संस्कृतियों में अग्रणी है। भारतीय वाङगमय में वेदों को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। वेदों के द्वारा आर्यों के दर्शन, धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का ज्ञान होता है। वैदिक साहित्य भारतीय संस्कृति का चिरन्तन स्रोत है। उसमें वैदिक संस्कृति की अजस्र धारा को रूपायित करने वाले मंत्र प्रस्तुत किए गए हैं। भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्वों को उद्घाटित करने में वैदिक संस्कृति अत्यंत सहायक सिद्ध है। उसमें हमारी सांस्कृतिक भावभूमि के दिग्दर्शन होते हैं। वैदिक सांस्कृतिक प्रतिमानों में वे मान्यतायें प्रतिपादित की गई हैं, जो समस्त संसार के मानव मात्र के लिए कल्याणकारी है।[1] इस शोध-प्रपत्र में भारतीय संस्कृति और सार्वभौमिक मानवमूल्य पर सरसरी दृष्टि डाली गयी है।

'संस्कृति' का अर्थ व परिभाषाएँ :

'संस्कृति' शब्द का अर्थ होता है-संस्कार, शुद्धता या परिष्कृत करना। परंपरा से प्राप्त विचार, मूल्य, कला, शिल्प, वस्तु तथा आदत संस्कृति के अंग हैं। संस्कृति जितनी पुरानी, व्यापक और जितने प्रकार के ग्रहण-त्याग से निर्मित होती है, उसमें उतने ही प्रकार के अभिप्राय एवं संकेत सुरक्षित रहते हैं। भारतीय संस्कृति इसका अनुपमेय उदहारण है।[2] अंग्रेजी में इसे 'culture' कहते हैं, जो हिन्दी में संस्कृति के रूप में माना जाता है। अंग्रेजी का 'culture' शब्द cultivation से सम्बद्ध है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से दोनों में समानता है। 'कवीन्द्र' रविन्द्र ने इसीलिए संस्कृति का सम्बन्ध 'कृष्टि' या 'कृषि' से जोड़ा है। आचार्य नरेन्द्र देव ने भी 'culture' शब्द cultivation (खेती) से सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपने एक लेख 'संस्कृति' में कहा है कि 'संस्कृति चित्त भूमि की खेती है।

'संस्कृति' शब्द की व्युत्पत्ति 'सम्' उपसर्ग-पूर्वक 'कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न हुई है। संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कार शब्द से हुई है। संस्कार से अभिप्राय संशोधन अथवा उत्तम बनाने वाले कार्य से है। इसी अर्थ में 'कृ' का 'स्कृ' हो जाता है: सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे (पाणिनि अष्टाध्यायी 6.1.137) पाणिनि के इस सूत्र से 'भूषण' अर्थ में 'सुट्' होने पर संस्कृति शब्द सिद्ध होता है। संस्कार मनुष्य एवं जाति दोनों के होते हैं। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति की संज्ञा दी जाती है। इसका स्वरूप है-संस्कृ+ति=संस्कृति। सम् का अर्थ ठीक प्रकार, कृति का अर्थ है करना। संस्कृति शब्द का अर्थ है संस्करण, परिष्करण एवं परिमार्जन। संस्कृत का भी अभिप्राय शुद्ध किए कार्य से है। अतः 'संस्कृति' शब्द सुसंस्कृत अर्थात् परिष्कृत एवं परिमार्जित स्थिति का बोध कराता है। संस्कृति शब्द स्त्रीलिंग है। उसकी विशेषता यह है कि वह भाववाचक संज्ञा है। वह व्यापक शब्द है। अतएव वह समूहवाचक है।[3] संस्कृति के विकास में आदान-प्रदान का स्वभाव निहित होता है। पारस्परिक संपर्क से ही संस्कृति का विकास होता है। संस्कृति की शाश्वतदीर्घता, पारस्परिक संपर्कों पर निर्भर रहती है। भारतीय संस्कृति इसका जीवंत प्रमाण है।

'संस्कृति' और खास कर भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में जो विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषाएँ प्राप्त होती है, वह सामूहिक रूप में संस्कृति का व्यापक अर्थ प्रकट करती हैं-

1. "संस्कृति विवेक बुद्धि का, जीवन को भली प्रकार जान लेने का नाम है।"

- डॉ.राधाकृष्णन्

2. "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। सभ्यता का आतंरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है और संस्कृति व्यक्ति के अंतर के विकास का।"

- आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

3. "मनुष्य के स्वभाव में, उसकी मनोवृत्तियों में जो संस्कार, जो परिमार्जन अथवा परिष्कार होता है उसे संस्कृति कहते हैं।"

- डॉ.कन्हैयालाल

4. "संस्कृति समाज द्वारा संचित ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून, प्रथा तथा अन्य क्षमताओं आदि का समन्वित रूप है, जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"

- ई.बी.टेलर

5. "संस्कृति विभिन्न क्रियाओं का योग मात्र नहीं है, बल्कि वह जीवन की एक पद्धति है-जो जीवन को जीने योग्य बनाती है।"

- टी.एस. इलियट[4]

6. "संस्कृति एक ऐसा गुण है, जो हमारे जीवन में व्यापा हुआ है। यह आत्मिक गुण है, जो मनुष्य स्वभाव में उसी प्रकार व्याप्त है, जिस प्रकार फूलों में सुगंध तथा दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग युगांतर में होता है। संस्कृति हजारों सालों में निर्मित होती है, अतएव प्रत्येक देश की भिन्न संस्कृति होती है।"

- दिनकर[5]

संस्कृति व्यक्तिगत न होकर सामूहिक है, जिसका विकास संस्कारों से होता है। भारतीय संस्कृति के संस्कार इतने बलवान है कि हमारी यह संस्कृति विज्ञान को भी विनाश की ओर जाने से निरंतर रोकने का प्रयास करती रही है।

भारतीय 'संस्कृति' की विशेषताएँ :

विश्व की अनेक संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति की अपनी अलग पहचान है। भारत की आत्मा भारतीय संस्कृति में निहित है। यहाँ हम अन्य संस्कृतियों से भारतीय संस्कृति की तुलना न करते हुए भारतीय संस्कृति की ही विशेषताएँ अति संक्षेप में देखने का प्रयास करेंगे। संस्कृति शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वेद में किया गया है-

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुविर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥[6]

यह विश्ववारा-सबके वरण करने योग्य, सबसे प्रथमतम संस्कृति अर्थात् वैदिक संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ईश्वरप्रदत्त आदि संस्कृति वरणीय एवं अनुकरणीय है। यह संस्कृति सम्पूर्ण विश्व का मार्ग प्रशस्त कर रही है। विश्व की अन्य संस्कृतियों का जब कोई अस्तित्व नहीं था, तब से हमारी भारतीय संस्कृति अपनी विरासत संभाले हुए हैं। इस संस्कृति की अपनी निजी विशेषताएँ हैं-

1. प्राचीनता- भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम सभ्यता है। भारत की सिन्धु घाटी की सभ्यता सुमेर, बेबीलोन और मिश्र के समकालीन मानी जा सकती है।

2. निरंतरता- भारतीय संस्कृति में एक प्रकार की निरंतरता देखी जा सकती है। अतः भारतीय संस्कृति की धारा सदियों से अबाध रूप से प्रवाहित होती चली आ रही है।

3. आध्यात्मिकता- हमारा देश आरम्भ से ही आध्यात्मिक रहा है, अतः हमने सदैव सांसारिक सुख की बजाय पारलौकिक सुख को महत्त्वपूर्ण माना है। भारतीय संस्कृति में शरीर को नाशवान तथा आत्मा को अमर माना गया है। 'आत्मानं विजानीहि' अर्थात् आत्मा को-अपने आपको पहचानो। या भारतीय संस्कृति की मुख्य धारणा रही है। जहाँ पाश्चात्य संस्कृति भौतिकता को विशेष महत्त्व देती है, वहाँ भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता को अत्यधिक महत्त्व देती है।

4. धर्म की प्रधानता- धर्म और धार्मिकता के बगैर भारत की कल्पना मुश्किल है। अनेक प्राचीन धर्मों को साथ लेकर चलने वाली यह संस्कृति विश्व के परिप्रेक्ष्य में अव्वल दर्जे की है। महाभारत में बताया गया है कि 'अर्थ तथा काम का

इस प्रकार सेवन करो कि धर्म की उपेक्षा न हो।' मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए इहलौकिक व पारलौकिक सुख की प्राप्ति करता है।

5. धार्मिक सद्भाव व विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता- धार्मिक सद्भाव और विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता भारतीय संस्कृति की अपनी निजी विशेषता है। धार्मिक सद्भाव के लिए हमारे यहाँ समुचित वातावरण है। अशोक ने बौद्ध धर्म अपनाने के पश्चात् कभी भी किसी पर बौद्ध धर्म अंगीकार करने का दबाव नहीं डाला। गुप्त शासक वैष्णव थे, परन्तु उन्होंने सबको अपनी इच्छानुसार धर्म अपनाने की छूट दे रखी थी। ऋग्वेद में एक मंत्र है-'एक सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' अर्थात् सत्य एक है, जिसे विद्वानों ने अनेक रीति से प्रकट किया है। भारतीय संस्कृति के सभी धर्मों में सृष्टि रचयिता, ईश्वर का अस्तित्व, अर्थ, काम, मोक्ष, सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह...आदि पर समान विचार रहे हैं।

6. समन्वयशीलता- समन्वयशीलता भारतीय संस्कृति का गुण है। इस संस्कृति ने प्रारंभ से ही अन्य संस्कृतियों को अपने में मिला लेने का स्तुत्य प्रयास किया है। आर्यों के द्वारा अनार्यों के देवताओं को अपनाना, शक, हूण, कुषाण आदि को अपने में समाना-यह भारतीय संस्कृति की समन्वयशीलता है। तभी प्रो. डॉड्वेल को कहना पड़ा है-"भारतीय संस्कृति महासमुद्र के समान है, जिसमें अनेक नदियाँ आकर विलीन होती रही है।"

7. ग्रहणशीलता- भारतीय संस्कृति हमेशा अन्य संस्कृतियों के अच्छे विचारों को अपनाती रही है। इस संस्कृति ने रोम व यूनान के ज्योतिष सिद्धांत को अपनाकर उसे 'रोमक सिद्धांत' नाम देकर अपने अनुरूप ढाला।

8. कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास- भारतीय संस्कृति हरदम यह मानती रही है कि मनुष्य के कर्म के हिसाब से फलप्राप्ति होती है। गीता कहती है-"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"[7] अच्छे कर्मों से मोक्ष की प्राप्ति होती है, जबकि बुरे कर्मों से पुनर्जन्म के चक्कर में पिसना पड़ता है। 'कर्म के आधार पर पुनर्जन्म' यह सिद्धांत सभी धर्मों ने स्वीकारा है। कर्म-सिद्धांत के कारण ही भारतीय संस्कृति में संयम, दया, दान, करुणा, त्याग, प्रेम, अहिंसा, संतोष, सहिष्णुता, सहनशीलता...आदि गुण विकसित हुए।

9. संयुक्त परिवार प्रथा व विश्व बंधुत्व- संयुक्त परिवार प्रथा भारतीय संस्कृति का आधारस्तंभ है। साथ ही साथ विश्वबंधुत्व की परिकल्पना इसी संस्कृति की देन है। भारतीय संस्कृति जिन गुणों से युक्त है उनमें सर्वश्रेष्ठ गुण उसका विश्वमुखी होना है। अपने इस गुण के आधार पर उसे विश्व संस्कृति का मूलाधार होने का गौरव प्राप्त है। यह संस्कृति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अर्थात् यह समस्त वसुधा एक ही कुटुंब है-की वैश्विक भावना प्रदर्शित करती है। इस संस्कृति का कहना है-

सर्वा आशा मम मित्र भवन्तु।[8]

तात्पर्यार्थ यह है कि पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण सब दिशाओं के मनुष्य मेरे मित्र होवे अर्थात् विश्व के मानव परस्पर मित्र भाव से मिल-जुलकर रहें।

अयं निजः पारो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु, वसुधैव कुटुम्बकम् I[9]

यह मेरा है, यह पराया है, ऐसे विचार संकीर्ण मानसिकता के लोग रखते हैं। उदारमना एवं उच्च चरित्र वाले व्यक्ति के लिए सारा संसार ही कुटुम्ब के समान है।

जनं विभति बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।[10]

पृथ्वी विभिन्न प्रकार के प्राणियों को एक परिवार के समान पालती है। उसी प्रकार पृथ्वी की भाँति प्रत्येक मनुष्य को पूरी वसुधा के सब मानव को अपने कुटुंब के परिजन की भाँति मानना होगा।

10. वर्णाश्रम व्यवस्था- वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता रही है। समाज का बँटवारा करते हुए उसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित किया गया, ताकि प्रत्येक मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन कर सके। मानवजीवन की औसत आयु 100 वर्ष मानते हुए उसे ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम जैसे चार भागों में विभाजित किया गया ताकि मनुष्य योजनानुसार जीवन बिता सके।

11. विविधता में एकता- भारत एक विशाल देश है, जहाँ धर्म, जातियाँ, भाषाएँ, जलवायु आदि की विविधताएँ विद्यमान है; किन्तु इसके बावजूद हमारे भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन में एकता के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। तभी सर हर्बर्ट रिजली कहते हैं- "भारत में दर्शक को भौतिक क्षेत्र में और सामाजिक रूप में भाषा, आचार, धर्म में जो विविधता दिखाई देती है, उसकी तह में हिमालय से कन्याकुमारी तक आतंरिक एकता है।"

यह कहना अनुचित न होगा कि भारतीय संस्कृति अपने आप में अद्वितीय है, जिसने अरसे से विश्व की अन्य संस्कृतियों में अपना अग्रीम स्थान कायम रखा है।

'जीवन' व 'मानव-जीवन' का अर्थ :

'जीव' धातु में 'ल्यूट' प्रत्यय द्वारा निर्मित 'जीवन' शब्द स्वयं में विशद विषय का द्योतक है। 'जीवन' को अनेकानेक चिंतकों-दार्शनिकों ने अपने चिंतन का विषय बनाया। इस सन्दर्भ में अनेक सूक्तियाँ सुनने को मिलती है- 'जीवन एक संघर्ष है।', 'जीवन एक नाटक है, हम तो उस नाटक के किरदार मात्र हैं।', 'जीवन विश्व की संपत्ति है।', 'वेदादि ग्रन्थ हमारा जीवन है।'...आदि उक्तियाँ 'जीवन' को व्याख्यायित करती हैं। श्री विनोबा भावे कहते हैं-जीवन अखंड है, अर्थात् एक अविभाज्य इकाई है जिसके भीतिक और आध्यात्मिक दो टुकड़े नहीं हो सकते। गाँधीजी के विचार से 'जीवन एक लालसा है। इसका ध्येय आत्म-ज्ञान की पूर्ण सफलता के लिए प्रयास करना है।' तो दर्शन के व्याख्याता डॉ.राधाकृष्णन 'जीवन को संयोग, भाग्य और चरित्र के ताने-बाने से बुना रहस्यमय कपड़ा मानते हैं।' 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एंड एथिक्स' में 'जीवन' को परिभाषित करते हुए कहा गया है-'जीवन पौधों, पशुओं, और मनुष्यों में पायी जाने वाली वह चारित्रिक विशेषता है जो उन्हें अन्य सभी पदार्थों से पृथक् करती है।" मानक हिन्दी कोश में 'जीवन' के पाँच लक्षण बताये गए हैं-"जीवन एक विशिष्ट प्रकार की क्रियाशीलता है जिसके पाँच लक्षण हैं- गतिशीलता, अनुभूति या संवेदन, आत्मपोषण, आत्मबंधन और प्रजनन।"[11]

उपर्युक्त विवरण से पता चलता है कि जीवन एक व्यापक शब्द है। यह पेड़-पौधे सहित सृष्टि के अनेक पदार्थों को अपने में समाविष्ट कर लोक-अलोक, मानव-प्रकृति, चेतन-अचेतन-सभी से सम्बंधित है; किन्तु इस संशोधन के परिप्रेक्ष्य में 'जीवन' के अंतर्गत 'मानव-जीवन' का अर्थ अभिप्रेत है। गतिशीलता और परिवर्तनशीलता जीवन की विकसनशीलता से सम्बंधित है। मनुष्य ने अपनी बौधिक शक्ति से जीवन को अत्यधिक प्रसारशील बनाकर उसे सम्पूर्ण वैश्विक जीवन का पर्याय बना दिया है। संसार में अनेक जीवात्माएं मौजूद हैं। उन सभी में मानव एक ऐसा सामाजिक प्राणी है, जिसने अपनी बुद्धिमता से समस्त जीवात्माओं पर आधिपत्य जमाये रखा है। मानव का जीवन अन्यों की तुलना में अलग है। उसका जीवन प्रत्येक प्राणी से भिन्न है। वह अपना जीवन है, उससे बेहतर बनाने के लिए अनुशासनमय जीवन जीता है। ऐसा जीवन जीने के लिए वह अपने आपको अच्छाई-सच्चाई के पथ पर ला खड़ा करता है। मनुष्य के गरिमामय जीवन के लिए जो जिम्मेदार हैं, उसे हम 'मूल्य' कहते हैं।

'मूल्य' का अर्थ व परिभाषाएँ :

मूल्य का सामान्य अर्थ कीमत होता है। अर्थशास्त्र की दृष्टि में भी यही अर्थ लिया जाता है। जड़-चेतन वस्तु का महत्त्व उसकी कीमत से आँका जाता है। हम यहाँ सोना-चाँदी का उदहारण लें, तो हमें पता चलेगा कि चाँदी की

तुलना में सोने की कीमत ज्यादा है; अर्थात् सोना मूल्यवान है। ठीक उसी प्रकार संसार में सभी मनुष्य को परमसत्ता ने एक ही प्रकार से बनाया है, परन्तु तुलनात्मक दृष्टि से मनुष्य-मनुष्य में सोने-चाँदी की तरह भिन्नता है। जो मनुष्य मूल्यहीन है, उसकी तुलना में जो मूल्यनिष्ठ है; उसे समाज-संसार सम्मान की नज़र से देखता है। संसार के लिए वह व्यक्ति मूल्यवान है, क्योंकि उसने अपने जीवन को जीवनमूल्यों से सजाया है।

'मूल्य' शब्द की व्युत्पत्ति मूल+यत्"[12] से हुई है जिसका अर्थ है- किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला धन, दास, कीमत, बाजार-भाव आदि। संस्कृत व्याकरण के आधार पर मूल्य शब्द की निम्नलिखित व्युत्पत्तियाँ मिलती है- (1) मूलेन आनाभ्यं मूल्यम्। (2) मूलेन समो मूल्यः। (3) मूलमर्हीत समो मूल्यम्। 'मूल्य' शब्द की इन व्युत्पत्तिमूलक व्याख्याओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मूल्य का अर्थ है- 'मूल के समान। 'मूल्य' शब्द अंग्रेजी के Value शब्द के समतुल्य प्रयुक्त होता है। Value शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा के Valere से हुई है जिसका अर्थ होता है अच्छा, सुन्दर। इस प्रकार Value शब्द में शिवम् और सुन्दरम् समाहित हैं। अंग्रेजी के इस 'वेल्यू शब्द के अर्थ में ग्रीक में 'एक्सियोज', जर्मन में 'वेट' और फ्रांसीसी में 'वोलोर' शब्द का प्रयोग होता है। 'वेल्यू' शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के आधार पर सुन्दर अथवा अच्छे लगने वाले (अन्य शब्दों में इच्छित अथवा वांछित) को मूल्य कहा जा सकता है। 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में 'मूल्य' को परिभाषित करते हुए कहा गया है-"जो जीवन को अस्तित्व और गति प्रदान करें, वही मूल्य हैं।"

वस्तुतः मूल्यों का स्रोत और माध्यम मनुष्य ही है। मूल्यविहिन मनुष्य पशु समान है। मूल्यविहिन मनुष्यों वाली दुनिया की कल्पना ही भयावह लगती है।

मूल्य की अनेक विद्वानों ने परिभाषाएँ दी है, उसके जरिए मूल्य को समझने का प्रयास करेंगे-

1. "मूल्य वह वैचारिक इकाई है जिसे आधार बनाकर व्यक्ति अपना जीवन जीता है और उसे आत्मोपलब्धि होती है।"

- डॉ.शशि सहगल

2. "मूल्य, समाजरूपी शरीर में हृदय के समान है जो समस्त समाज में जीवन का संचार करता है।"

- डॉ.हेमेन्द्रकुमार पानेरी

3. "हर मानव वर्ग व समाज किन्हीं मूल्यों और रीतियों पर आधारित है। हम कैसे एक दूसरे से व्यवहार करें। एक दूसरे से क्या अपेक्षा करें? किन आचार-विचारों को आवश्यक माने। किन आचार-विचारों से एक-दूसरे का मूल्यांकन करें यह सब आधारभूत मूल्यों पर निर्भर है।"

- श्री महेश शर्मा

4. "मूल्य आचरण के सिद्धांतों को कहते हैं। मूल्य वे मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता चलती रही है और जिनकी उपेक्षा करने वालों को परम्परा अनैतिक, उच्छृंखल या बागी कहती है।"

- दिनकर[13]

5. "मूल्यों का सम्बन्ध मनुष्य की चेतना से अनिवार्यतः है। मूल्य का सम्बन्ध मात्र जान, इच्छा या भावना से नहीं है, अपितु मूल्य समग्र चेतना के विषय हैं।"

- डॉ.संगमलाल पाण्डेय

मूल्य, जीवन-मूल्य और मानव-मूल्य :

साहित्यिक सन्दर्भ में जीवन-मूल्य कहने मात्र से जिस अवधारणा का संकेत मिलता है, उसमें 'मूल्य' शब्द के साथ 'जीवन' विशेषण के रूप में प्रयोजित है-जीवन का मूल्य। उत्कर्षमय जीवन, जीवन के मूल्यों का मूल आधार है।

मूल्य बाहर से आरोपित नहीं हो सकते। ये जीवन के सन्दर्भ में विकसित पल्लवित परिवर्तित होते हैं। जीवन के सन्दर्भ में हमारा जैसा दृष्टिकोण होगा, उसी के अनुरूप जीवन-मूल्य हमें हाथ लगते हैं। जब ये मूल्य मानवजीवन के साथ जुड़ते हैं, तब वे मानव-मूल्य कहलाते हैं।

मानव अथवा उसके जीवन के अभाव में 'मूल्य का अस्तित्व संभव नहीं है। इस तरह से ये शब्द सामान्यतया पर्यायवाची रूप में प्रयुक्त होते देखे जा सकते हैं। उद्देश्य की दृष्टि से 'मूल्य', 'मानव-मूल्य' और 'जीवन-मूल्य' एक-दूसरे के पूरक कहे जा सकते हैं। जहाँ तक 'मूल्य', 'मानव-मूल्य' और 'जीवन-मूल्य' में परिव्याप्त सूक्ष्म भेद का सम्बन्ध है, 'मानव-मूल्य' और 'जीवन-मूल्य' के मूल में जगत् एवं जीवन के प्रति प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिकोण बना रहा है। वास्तव में मनुष्य की मूल्य चेतनाएँ ही मानव मूल्यों, जीवनमूल्यों का सृजन कराती हैं। अंतर केवल इतना ही है कि मानव-मूल्य अथवा जीवन-मूल्य चेतना-रूपी मूल्यों से गतिमान होते हैं, प्रत्यक्ष व्यवहारों पर अवलंबित होते हैं।[14] मनुष्य के आपसी व्यवहार मूल्यों के कारण ही सकारात्मक होते हैं।

भारतीय संस्कृति और मानव-मूल्य :

भारतीय संस्कृति की आधारशिला मानव-मूल्यों पर ही प्रतिष्ठित है। किसी भी परिवार, समाज या राष्ट्र की आर्थिक उन्नति भौतिक संसाधनों पर ही नहीं, अपितु उस राष्ट्र के नागरिकों द्वारा व्यवहृत जीवन-मूल्यों पर आधारित है। भारतीय संस्कृति प्राचीन ऋषियों के चिंतन-मंथन से निःसृत अमृतमयी विचारों से समलंकृत है, जो प्रत्येक देश, प्रत्येक काल एवं प्रत्येक परिस्थिति में समसामयिक एवं प्रासंगिक हैं। मानवजीवन को स्वस्थ दिशा देने वाले लोकोपकारी तत्त्वों का नाम है मानव-मूल्य, जिनसे स्वस्थ व्यक्तित्व एवं स्वस्थ परिवार की संरचना होती है तथा क्रमशः स्वस्थ समाज एवं सुदृढ़ राष्ट्र की नींव निर्मित होती है। यह मानव-मूल्य मानव जीवन के विषय झंझावातों में भी मनुष्य की जीवनरूपी नौका के लिए आकाशदीप की भांति मार्गदर्शन करते रहते हैं, उसे दिग्भ्रमित होने से बचाते हैं। 'सर्वजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय' की भावनामृत से भरे हुए ये मानव-मूल्य उस संजीवनी बुट्टी की तरह हैं जो मृतप्रायः प्राणों में भी श्वाँस फूंक देते हैं। माँ के आँचल की उस शीतल छाँह की तरह हैं जो मनुष्य को जीवनभर सुख प्रदान करती है तथा पूर्वजों के उन आशीर्वादों की तरह हैं जो मनुष्य की जीवन पर्यन्त रक्षा करते हैं। इस प्रकार ये मानव-मूल्य उस अभेद्य अछेद्य अजेय सुरक्षा कवच की तरह हैं, जिनकी बदौलत मनुष्य भवसागर से सकुशल पार उतर जाता है। ये मानव-मूल्य अमूल्य होते हुए भी मानव-जीवन को मूल्यवान बनाते हैं। मानव-मूल्यों की दौलत से एक निर्धन भी स्वयं को धनवान से अधिक संतुष्ट अनुभव करता है तथा इनके अभाव में एक धनवान भी स्वयं को दरिद्र अनुभव करता है।[15] मूल्यों से ही मानव अपने जीवन को उन्नत बनाता है।

मूल्य और संस्कृति का पारस्परिक सम्बन्ध अविछिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। मानव-जीवन, उसका आचार-व्यवहार, चिंतन, गुण, विशेषता एवं संस्कृति कुछ मूल्यों पर आधारित होते हैं। इसी आधार पर मूल्य और संस्कृति के पारस्परिक सम्बन्ध को देखा-परखा जा सकता है। इन दोनों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान है। मनुष्य द्वारा कतिपय जीवनमूल्यों का अनुसरण करने से जहाँ उसके जीवन में सुचारुता आती है, वहीं ये मूल्य ही मानव-जीवन को सुसंस्कृत बनाते हैं और 'संस्कृति' की संज्ञा के नियोजक बनाते हैं। परिणामतः मनुष्य एक सांस्कृतिक प्राणी बन जाता है। इस प्रकार, "व्यक्ति और संस्कृति मूल्यों के सृजनकर्ता हैं, मनुष्य ने जीवन के विभिन्न पक्षों का साक्षात्कार कर एक ऐसी स्वतंत्र चिंतनमूलक आचारपद्धति की खोज की, जो केवल उसके ही अनुकूल न हो, अपितु एक विस्तृत सामाजिक आधार पर उसकी अनुकूलता सिद्ध हो सके। इन्हीं मानव मूल्यों से किसी संस्कृति का निर्माण होता है। "संस्कृति की पहचान उस देश के नागरिकों के आपस के मूल्यनिष्ठ आचार-विचारों पर निर्भर हैं।

हमारे विश्व-प्रसिद्ध मूल्यवान ग्रन्थ मनुष्य को मूल्यनिष्ठ जीवन जीने का सलीका सिखाते हैं-

असतो मा सद्गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमेयेति।

- बृहदारण्यक उपनिषद् 1/3/28

असत्य की ओर नहीं, सत्य (पथ) की ओर बढ़ो। अंधकार की ओर नहीं, प्रकाश की ओर बढ़ो। मृत्यु की ओर नहीं, अमृतत्व (जिन्दगी) की ओर बढ़ो।

यान्यवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। - तेत्तिरियोपनिषद् 1/11/2

मानव को सीख दी गयी है, अकलुषित कृत्यों का आचरण करो, कलुषित का नहीं।

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीविद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।

- मनुस्मृति 6.92

धैर्य, क्षमा, संयम, चोरी न करना, शुचिता, इन्द्रियों को वश में करना, विवेकमति, ज्ञान, सत्य, क्रोध न करना ये दस गुण मानव-मूल्य या धर्म स्वरूप माने गए हैं।

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥

- रामायण अयोध्याकाण्ड 109/13

इस जगत् में सत्य ही ईश्वर है, सत्य पर ही सदा धर्म की स्थिति रहती है। सबके मूल में सत्य ही है। सत्य से श्रेष्ठ कोई पद नहीं है।

यह हमारी प्राचीनतम संस्कृति का दिग्दर्शन है। भारतीय संस्कृति में जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाला चित्र हमें दिखाई देता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। मूल्य एक इकाई है, सामाजिक संतुलन की पृष्ठभूमि है; परिणामतः मूल्यों के परिपालन से एक पीढ़ी जो अर्जित करती है, वह विरासत के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होता रहता है। संस्कृति में प्रत्येक की एक निश्चित भूमिका है। चाहे वह सामान्य व्यक्ति हो, चिन्तक, तत्ववेत्ता या साहित्यकार हो; हर कोई संस्कृति को उच्चतम स्थिति पर पहुँचाने में अपना यथोचित योगदान देता रहता है। एक तरफ मूल्य मानव-जीवन को सुसंस्कृत बनाकर उत्तम रूप प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी तरफ संस्कृति भी जीवन को सुचारू बनाकर जीने योग्य बनाती है। जीवन-मूल्य किसी राष्ट्र की संस्कृति की रक्षा करते हैं, उसे नूतन उपादान प्रदान करते हैं तथा संस्कृति उन उपादानों का विकास करती है।

निष्कर्षतः यही कहना पर्याप्त होगा कि संस्कृति और मूल्य भावना-सापेक्ष हैं, एक को जाने बगैर दूसरे को नहीं जाना जा सकता। बाह्य दृष्टि से भले ही उन दोनों में अंतर विद्यमान हो, परन्तु आंतरिक रूप में ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। वास्तव में मूल्य, संस्कृति की बुनियाद होते हैं, अवयव होते हैं। यदि मनुष्य को सुसंस्कृत बनना है, तो अपने जीवन में मूल्यों को अपनाकर उसका क्रियान्वयन करना जरूरी है। स्वस्थ संस्कृति में ही मनुष्य में निहित सुषुप्त शक्तियों को समुचित दिशा-निर्देश देने की शक्ति होती है। इसके लिए जरूरी है मूल्यों की यथारूपेण पहचान ! भारतीय संस्कृति इन्ही मानदंडों पर मूल्यनिष्ठ मानव का निर्माण करती है। ऊपर चर्चित अनेक सार्वभौमिक मानवमूल्यों के कारण ही हमारी भारतीय संस्कृति का विश्व की तमाम संस्कृतियों में अनूठा स्थान विद्यमान है।

सन्दर्भ सूची :

1. सोती, वीरेन्द्र चंद्र, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.14

2. मायावंशी, के. एम. / पटेल, मीना, हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक चेतना (डॉ. बी. जे. पटेल, आलेख 'सांस्कृतिक चेतना की धरोहर नैतिकता'), चिंतन प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2011, पृ.30
3. सोती, वीरेन्द्र चंद्र, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, राजपाल एण्ड सन्ज़ दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.1
4. मायावंशी, के. एम. / पटेल, मीना, हिन्दी साहित्य में सांस्कृतिक चेतना (प्रा.मुकेशकुमार, आलेख-संस्कृति: अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप), चिंतन प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2011, पृ.11-12
5. नागोरी, एस.एल., भारतीय संस्कृति, ग्रीनलीफ पब्लिकेशन्स वाराणसी, प्रथम संस्करण 2009, पृ. 2
6. यजुर्वेद, अध्याय 7, मंत्र 14
7. श्रीमद् भगवद्गीता, 2/47
8. अथर्ववेद, 19/15/6
9. हितोपदेश, 1/69 तथा शारंगधरपद्धति, श्लोक 273
10. अथर्ववेद, 12/1/45
11. वर्मा, डॉ. रामचंद्र, मानक हिन्दी कोश (खंड-2), हिंदी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, संस्करण 1992, पृ.286
12. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत-हिन्दी कोश, रचना प्रकाशन जयपुर, संस्करण 2002, पृ.812
13. सेठी, डॉ. हरीश, जीवन मूल्य विमर्श, संजय प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण सन् 2008 ई.,पृ.15
14. वही, पृ.7
15. शर्मा, सुकेश, भारतीय संस्कृति में मानव मूल्य और लोक कल्याण, संजय प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 2008 ई., पृ.V